ॐ

सदानीरा

विश्व कविता और अन्य कलाओं की पत्रिका

शरद 2017

या त्रा एं

अंक-17, वर्ष-5
जुलाई-सितंबर 2017
ISSN 2321-1474

प्रधान संपादक
आग्नेय
संपादक
अविनाश मिश्र

मुखावरण, पृष्ठावरण और भीतरी तस्वीरें : महेश वर्मा

sadaneera.com /Sadaneera

प्रधान कार्यालय :
बी-207, चिनार वुडलैंड,
कोलार रोड, भोपाल-4622016
मध्य प्रदेश
फोन : 0755-2424126, 9303139295
agneya@sadaneera.com

संपादकीय संपर्क :
171, गिरधर एंक्लेव,
साहिबाबाद, गाजियाबाद-201005
उत्तर प्रदेश
मो. : 9818791434
editor@sadaneera.com

रचनाएं भेजने के लिए :
submit@sadaneera.com

सहयोग-सदस्यता

एक अंक के लिए : 100 रुपए, 5 डॉलर
संस्थाओं के लिए : 700 रुपए
वार्षिक सदस्यता : 500 रुपए
आजीवन सदस्यता : 10,000 रुपए

'सदानीरा' डाक से मंगाने के लिए सदानीरा के नाम संपादकीय पते पर चेक/ड्राफ्ट भेजें या देना बैंक (अरेरा कॉलोनी, भोपाल, IFSC : BKDN0811184) के करंट अकाउंट नंबर : 118411023949 में राशि जमा करके हमें ईमेल या फोन पर सूचित कर दें.
© सर्वाधिकार सुरक्षित. इस पत्रिका का कोई भी हिस्सा किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम, जिसमें सूचना संग्रहण और सूचना संसाधन की विधियां सम्मिलित हैं, द्वारा प्रकाशक अथवा संपादकों की पूर्वानुमति के बिना पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता सिवाय एक समीक्षक के जो समीक्षा में संक्षिप्त अंशों को उद्धृत कर सकता है. प्रकाशित कृतियों का कॉपीराइट लेखकों / अनुवादकों / कलाकारों का है. भेजी गई रचनाओं पर अगर सात दिन के भीतर कोई उत्तर नहीं मिलता, तब रचनाकार उसे अन्यत्र भेजने के लिए स्वतंत्र है. मुफ्त अंक और नमूना प्रति भेजने की सुविधा नहीं है, कृपया इस संदर्भ में कोई फोन, ई-मेल या पत्र-व्यवहार न करें. 'सदानीरा' की सदस्यताएं केवल प्रिंट इश्यू के लिए हैं. प्रिंट में अनुपलब्ध कुछ अंक डिजिटल फॉर्म में sadaneera.com के **पूर्व अंक** सेक्शन में हैं और वहां नि:शुल्क पढ़े और सहेजे जा सकते हैं.

केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के सहयोग से
माया दुबे अग्निमा स्मृति संस्थान के लिए प्रकाशित

क्रम

शरद 2017

या त्रा एं

शुरुआत 6

आग्नेय

हिंदी कविता 10

देवी प्रसाद मिश्र

बातें 13

संजय उपाध्याय से अमितेश कुमार

चिट्ठियां 25

बाबुषा कोहली

स्पैनिश कविता 31

रॉबर्तो बोलान्यो

अनुवाद और प्रस्तुति : उदय शंकर

ग्राफिक-गल्प 40

प्रमोद सिंह

आलोचना 48

नीलाक्षी सिंह पर वागीश शुक्ल

एकाग्र 80

कविताएं/सफर/जवाब : अजंता देव

90 **पाठ**

अजंता देव की कविताएं : दीपशिखा

96 **वृत्तांत**

उस्मान खान

140 **सुर**

प्रवीण झा

143 **पंजाबी कविता**

बावा बलवंत

अनुवाद और प्रस्तुति : मोनिका कुमार

147 **दृश्य**

स्मृति सुमन

152 **तस्वीरें**

महेश वर्मा

160 **उत्प्रेक्षा**

स्कंद शुक्ल

165 **चाबुक**

शशिभूषण द्विवेदी

168 **सौ शब्द**

अविनाश मिश्र

संपादक होने का अर्थ

आग्नेय

'वर्तमान साहित्य' के जनवरी-मार्च' 97 के अंक में भवदेव पांडेय का एक लेख 'मतवाला और निराला' प्रकाशित हुआ. इस लेख में 'मतवाला' के संपादक के रूप में निराला की क्रांतिकारी भूमिका को रेखांकित किया गया. 'मतवाला' और निराला ने किस तरह लेखकीय और पाठकीय रुचि में नवाचार लाने के लिए वैचारिक संघर्ष किया और किस तरह पूरे संपादन-काल में निराला का तीखा तेवर संपादक होने की गरिमा को आलोकित करता रहा, इसका तथ्यपरक विवेचन इस लेख से मिलता है.

जैसा कि भवदेव पांडेय ने लिखा है : उग्रता निराला का स्वभाव था, परंपरागत सामाजिक ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए संघर्ष करना उनकी प्रकृति थी, साहित्य की काल्पनिक प्रतिमाओं को खंडित कर उसे नए सांचे में ढालने और आम आदमी की भागीदारी के साथ उसे यथार्थवादी बनाने का प्रयास उनका संकल्प था. वह न रीढ़हीनता के शिकार थे और न समझौतावादी दृष्टि के कायल, क्योंकि वह सही अर्थों में 'मत वाले' थे.

क्या आज हमारे रचनात्मक समय में ऐसे मत वाले या मतवाले संपादक और उनके मार्फत संपादित पत्रिकाएं हैं? लघु पत्रिकाओं और तीन-चार बड़ी पत्रिकाओं के संपादकों को छोड़ दें तो यह कहना मुश्किल नहीं होगा कि अनेक संपादक ऐसी पत्रिकाओं के संपादक हैं जो

उनके द्वारा ही संपादित, उनके द्वारा ही प्रकाशित, सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उनके द्वारा ही पठित हैं. ये वे पत्रिकाएं हैं जिनको उनके संपादक आत्मप्रवंचना में साहित्य के सत्य का बखान करने वाली समझते हैं.

दरअसल, ये वे पत्रिकाएं हैं जिनके उतने ही पाठक हैं जितने उनके लेखक हैं. ये वे पत्रिकाएं हैं, जो इसलिए नहीं निकाली जाती हैं कि वे बिकें या लोग उनको पढ़ें. अपनी साहित्यिक लिप्सा को शांत करने के लिए ही उनका अस्तित्व बनाए रखा जाता है. हजारों की तादाद में छपने वाली ये साहित्यक पत्रिकाएं भंडारों में दबी दीमकों का भोजन बनती रहती हैं. उनके प्रकाशकों और उनके संपादकों को रत्ती भर चिंता नहीं रहती कि कम से कम दो-चार सौ लोग ही सही उनको पढ़ें.

ये पत्रिकाएं संपादकों और अपने मित्र लेखकों को महान रचनाकार सिद्ध करने के लिए छपती रहती हैं. इन पत्रिकाओं के संपादक कुछ अच्छे रचनाकारों को मवेशियों की तरह अपने बाड़े में बांध लेते हैं और इस प्रकार उनकी रचनाशीलता की धीरे-धीरे हत्या करते रहते हैं. कभी ये बंद हो जाती हैं तो फिर नए नामों से निकलने लगती हैं. एक संस्थान से दूसरे संस्थान को हस्तांतरित कर दी जाती हैं. कभी-कभी वे अपना चोला भी बदल लेती हैं, लेकिन उनकी संपादकीय दृष्टि आत्म-केंद्रित बनी रहती है.

दूसरी और कुछ ऐसी पत्रिकाएं हैं, जो वैचारिक संघर्ष की अनिवार्य पुस्तकों की तरह पढ़ी जाती हैं. इन पत्रिकाओं के पीछे न तो किसी संस्था और न किसी धनवान का सहारा होता है. वे सिर्फ संपादकों की अदम्य जिजीविषा, अथक परिश्रम और अटूट प्रतिबद्धता से जीवन-रस लेती हैं. ये पत्रिकाएं मात्र पत्रिकाएं नहीं होती हैं, वे एक साहित्यिक अभियान बन जाती हैं और अनेक रचनाकारों को भरोसा दिलाती हैं कि जीवन और समाज के जटिल रिश्तों की एक विश्वसनीय पहचान कराने में वे मददगार हैं. वे साहित्य के सच को अद्वितीय, अलौकिक और आध्यात्मिक बनाकर समाज के सत्यों से विमुख नहीं करती हैं. लिखे हुए को समाज तक पहुंचाने का दायित्व उनका ही है, इसे वे कभी ओझल होने नहीं देतीं.

साहित्यिक पत्रिकाओं के ऐसे द्वंद्वात्मक समय में यह जरूरी लगता है कि हम यह जानने की कोशिश करें कि किसी साहित्यिक पत्रिका का संपादक होने के क्या अर्थ हैं या हो सकते हैं ? संपादक बनने पर उसके अर्थ से प्रश्नोन्मुख होने की जगह वह उससे बच निकलता है. उसके रूबरू होने से वह डरता है. संपादक हो जाने पर वह, वह नहीं हो पाता है जो उसे होना है, होना था या होते रहना है. संपादक की कुर्सी पर बैठते ही वह जीवन-दृष्टि और साहित्य-दृष्टि के विरोधाभास में इस तरह उलझ जाता है कि उसकी हालत दो पाटों के बीच पिस जाने वाले की हो जाती है और उसका साबुत बच पाना कठिन हो जाता है.

अनेक ऐसे प्रश्न हैं, जो दो पाटों के बीच आ जाने पर संपादक को अपने आपसे पूछने चाहिए. क्या संपादक का रचना के प्रति कोई पूर्वाग्रह होता है ? क्या उसका कोई कलात्मक